

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में वर्णित अणुव्रत एवं शीलव्रत

डॉ० बेबी कुमारी*

जैन आचार-मीमांसा में अणुव्रतों का अत्यधिक महत्व है। जैन श्रावक के लिए अणुव्रतों का पालन करना नितान्त आवश्यक बताया गया है। रत्नकरण्डश्रावकाचार में अणुव्रतों का अतिचार सहित विवेचन किया गया है। इस प्रसंग में इस ग्रन्थ में समन्तभद्र ने अणुव्रतों के पालन में अणुव्रतों के प्रसिद्ध एवं पांचों पापों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम देकर निरतिचार व्रतों का पालन का फल दर्शाते हुए उन्होंने मूल गुणों के नाम भी गिनाए हैं। जैनाचार में मुनि और गृहस्थ के लिए अलग-अलग व्रत बतलाए गए हैं। मुनि के लिए महाव्रत है तथा गृहस्थ के लिए अणुव्रत है। यहाँ अणु के साथ व्रत शब्द लगा हुआ है जिसका अर्थ है व्रतों का एक देश में पालन करना और स्थूल पापों से विरत रहना।

व्रत : अणुव्रत का स्वरूप—समन्तभद्र ने कहा है स्थूल प्राणातिपात स्थूलवितयव्हार, स्थूलस्तेय, स्थूलकाम और स्थूल मूर्च्छा इन पांचों से विरक्त होना अणुव्रत है।¹

उमास्वामी हिंसा, अनृत, अस्तेय, अब्रह्म तथा परिग्रह से विरति को व्रत कहते हैं।² परन्तु समन्तभद्र योग्य विषय से संकल्पपूर्वक विरक्ति को व्रत कहते हैं।³ पूज्यपाद देवनन्दी के अनुसार प्रतिज्ञा पूर्वक जो नियम लिया जाता है वह व्रत है या करने योग्य है या नहीं करने योग्य है इस प्रकार नियम करना व्रत है।⁴

परमात्मप्रकाश में सर्वनिवृत्ति के परिणाम को व्रत माना गया है।⁵ सोमदेव ने व्रत के सम्बन्ध में लिखा है कि सेवनीय वस्तु का संकल्प पूर्वक त्याग करना व्रत है अथवा अच्छे कार्यों में प्रवृत्ति और बुरे कार्यों से निवृत्ति को व्रत कहते हैं।⁶ पण्डितप्रवर आशाधर जी ने व्रत की परिभाषा में वृद्धि करते हुए लिखा है कि किन्हीं पदार्थों के सेवन का अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों का नियत या अनियत काल के लिये संकल्पपूर्वक त्याग करना व्रत है अथवा पात्रदानादि शुभकर्मों में उसी प्रकार सकलप पूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।⁷

उपर्युक्त आचार्यों के मन्तव्यों से स्पष्ट है कि उमास्वामी ने जिनके विरक्त होने को व्रत कहा, उनके स्थूल त्याग को समन्तभद्र ने अणुव्रत कहा है। इसके बाद

*एम०ए०, पी-एच०डी० प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

के उत्तरवर्ती आचार्यों ने समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित व्रत के लक्षण का ही प्रायः अनुकरण किया है। सोमदेव एवं आशाधर ने जोड़ने का कार्य अवश्य किया परन्तु वे समन्तभद्र के ऋणी रहे हैं।

उमास्वामी ने व्रतों के वर्णन के उपरान्त कहा है कि जो शल्यरहित होता है वह व्रती है।⁸ ऐसे व्रती के दो भेद हैं— 1. अगारी, 2. अनगारी।⁹ अणुव्रतों को पालन करने वाला अगारी कहलाता है।¹⁰ इतने कहने के बाद सूत्रकार ने अगारी को दिग्देशदि सात व्रतों से सम्पन्न बताया है।¹¹

समन्तभद्र ने उपर्युक्त चिन्तन को परिमार्जित एवं विकसित करते हुए लिखा है कि गृहस्थों का चरित्र अणुव्रतों और शिक्षाव्रत तीन प्रकार का है। वे क्रमशः पांच तीन और चार भेद युक्त हैं।¹² इस प्रकार 12 व्रत श्रावक को ही पालने योग्य बताए हैं। सोमदेव ने बारह व्रतों को श्रावक के उत्तर गुणों के रूप में स्वीकार किया है।¹³ इससे प्रतीत होता है कि सोमदेव ने समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित मूलगुण के लक्षण को नकारते हुए अन्य आचार्यों के आधार पर पांच उदम्बरों पलों के त्याग पूर्वक मद्य मांस मधु के त्याग को अष्टमूलगुण स्वीकार किया है तथा 12 व्रतों की श्रावक के उत्तर गुण माना है।

अणुव्रत क्रम विप्रतिपत्ति—समन्तभद्र के समय उमास्वामी का अणुव्रतों से सम्बन्धित चिन्तन तो था ही पर उन्हें पूर्ण मार्गदर्शन कुन्दकुन्द से प्राप्त हुआ था। कुन्दकुन्द के अनुसार—

धूले तसकायवहो धूले मोसे तितिकख धूले य।

परिहारो परिपिम्मे परिग्गहारंभ परिमाणं।।¹⁴

अर्थात् स्थूलत्रसकायवधपरिहार, स्थूलमृषा परिहार, स्थूलतितिलापरिहार, परप्रेम परिहार, परिग्रहारंभपरिमाण, ये समन्तभद्र के अणुव्रतों की संख्या से मेल खाती है पांच अणुव्रत की संख्या किन्तु चौथे और पांचवे अणुव्रतों के नाम में अन्तर प्राप्त होता है जैसे समन्तभद्र ने चौथे और पांचवे अणुव्रत के नाम में अन्तर प्राप्त होता है जैसे समन्तभद्र ने चौथे अणुव्रत का नाम परदारनिवृत्ति और स्वदारसन्तोष¹⁵ तथा पांचवें का परिग्रह परिमाण के साथ—साथ इच्छा परिमाण भी लिखा है।¹⁶ समन्तभद्र से उत्तरवर्ती आचार्य रविषेण ने भी चतुर्थ अणुव्रत का परदारसमागमविरति और पांचवे का अनन्तगर्हा विरति दिया है।¹⁷ आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में प्रथम अणुव्रत का नाम दया रखा है।¹⁸

आचार्य जिनसेन (द्वितीय) ने आदिपुराण के चौथे व्रत का नाम परस्त्रीसेवननिवृत्ति तथा पांचवे व्रत का नाम तृष्णाप्रकर्षनिवृत्ति रखा है।¹⁹ आशाधर ने चतुर्थ व्रत का नाम स्वदारसन्तोष रखा है।²⁰

अहिंसाणु व्रत—समन्तभद्र ने लिखा है— मन, वचन, काय के कृत कारित और अनुमोदन रूप संकल्प के द्वारा त्रस जीवों को पात नहीं करता है उसे स्थूल वध विरमण कहते हैं।²¹ उपर्युक्त लक्षण अहिंसाणुव्रत का परिपूर्ण लक्षण है। उत्तर काल में इसमें कुछ भी पटाने बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई किन्तु स्वार्थसिद्धि में त्रिधा पद जोड़कर मन वचन, काय या कृत कारिक अनुमोदना का निर्देश कर दिया गया है किन्तु संकल्प का उल्लेख उसमें भी नहीं है।²²

उत्तरवर्ती आचार्यों में अमृतचन्द ने पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में, 24 सोमदेव ने उपासकाध्ययन में अमितगति ने अपने श्रावकाचार में, पं० आशाधर जी ने सागारधर्मावृत में अहिंसा के विभिन्न पहलुओं पर विचार व्यक्त किये हैं परन्तु समन्तभद्र के द्वारा प्रतिपादित लक्षण उत्तरवर्ती परम्परा में अपरिवर्तनीय रहा।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार—अहिंसाणुव्रत के अतिचार जैसे समन्तभद्र के पूर्ववर्ती उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र में दर्शाए हैं उसी रूप में समन्तभद्र ने और उत्तरवर्ती समस्त आचार्यों ने समान रूप से स्वीकार किये हैं। जिन दोषों से व्रत पूरी तरह खण्डित नहीं होता है किन्तु आंशिक खण्डित हो जाता है वे दोष अतिचार कहे जाते हैं। वे निम्न हैं—1. वध, 2. बन्धन, 3. छेद, 4. अतिभारोपण, 5. अन्नपाननिरोध।

उपर्युक्त अतिचारों से ज्ञात होता है कि अहिंसाणु व्रत का सम्बन्ध केवल खानपान की शुद्धि से ही नहीं था किन्तु व्यवहार की शुद्धि से भी था क्योंकि ऊपर के पांचों अतिचार मनुष्य और पशुओं के साथ किये जाने वाले व्यवहार से ही सम्बन्ध रखते हैं, अतः सामाजिक जीवन की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

सत्याणुव्रत—सत्याणुव्रत आदि चार अणुव्रत अहिंसाणुव्रत के रक्षक हैं जैसे किसान खेत की रक्षा के लिए चारों ओर बाड़ी लगा देता है वैसे ही अहिंसाव्रत की रक्षा के लिए वे चारों बाड़ रूप हैं। उनके पालन करने से अहिंसाव्रत की रक्षा होती है। सत्याणुव्रत के लिये कन्दुकुन्द ने स्थूलभूषावादविरमण नाम दिया है। समन्तभद्र ने भी उसको इसी नाम से स्वीकार किया है यथा— जो स्थूल अलीक न तो स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है और दूसरों को विपत्तिकारक सत्य भी न स्वयं बोलता है, न दूसरों से बुलवाता है उसे सन्त जन 'स्थूल मृषावाद विरमण' कहते हैं।

सत्याणुव्रत की यह परिभाषा "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" कथन के निकट है।

असत्य की परिभाषा—सत्य को समझाने के लिये आचार्यों ने सर्वप्रथम असत्य का प्रतिपादन किया है। यथा उमास्वामी कहते हैं "असदभिधानमनृतम्"। पूज्यपाद देवनन्दि ने इसकी व्याख्या सर्वार्थसिद्धि में निम्न प्रकार की है असत्

अर्थात् अप्रशस्त और ऐसे वचन जिससे प्राणी को पीड़ा पहुंचती हो वह चाहे सत्य हो या असत्य, अप्रशस्त है अतः उसका बोलना असत्य है।

आचार्य अमृतचन्द ने पुरुषार्थसिद्धयुपाय में असत्य के चार भेद किये हैं। यथा—

1. अविद्यमान वस्तु का निषेध करना, 2. अविद्यमान वस्तु को विद्यमान बतलाना, 3. कुछ का कुछ कह देना, 4. गर्हित, सावद्य और अप्रिय वचन।

आचार्य सोमदेव ने असत्य के विवेचन में वचन के चार भेद दर्शाये हैं— 1. असत्य सत्य, 2. सत्य असत्य, 3. सत्य सत्य, 4. असत्य असत्य। इसका अभिप्राय यह है कि कोई वचन असत्य होते हुए भी सत्य होता है। सत्य होते हुए भी असत्य हो जाता है। जो वस्तु जहां जिस रूप में देखी या सुनी थी उसको वैसा ही कहना सत्य सत्य है और सर्वथा असत्य ही असत्य असत्य है।

अमितगति ने अपने श्रावकाचार में अमृतचन्द की तरह ही असत्य के चार भेद किये हैं। परन्तु पं० आशाधर जी ने स्पष्टतः सत्याणुव्रत का वर्णन करते हुए सोमदेव की तरह वचन के दो भेद बताए हैं परन्तु सत्याणुव्रत का स्वरूप बतलाते हुए लिखा है कन्या अलीक गो—अलीक, मा अलीक, कूटसाधि और न्यासपाल की तरह जिससे अपने या दूसरों पर विपत्ति आती हो ऐसे सत्य को छोड़ने का निषेध किया है। ऐसा वर्णन किसी भी दिगम्बर जैन ग्रन्थ में नहीं मिलता। लगता है कि वह हेमचन्द्र आचार्य के योगशास्त्र से लिया गया है।

योगशास्त्र में लिखा है 1. कन्या अलीक, 2. गो अलीक, 3. भूमि अलीक, 4. कूटसाक्ष्य, 5. न्यासापलाय ये स्थूल अलीक पांच हैं।

उपर्युक्त प्रकार असत्त्यों का त्याग की सत्य है स्थूल त्याग ही सत्याणुव्रत है। अतः सिद्ध है कि आचार्य समन्तभद्र द्वारा प्रतिपादित लक्षण में उत्तरवर्ती आचार्यों ने कुछ भी स्वतः बुद्धि से परिवर्तन नहीं किया है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. रत्न करण्ड श्रावकाचार — 52
2. हिंसानृततस्तेयाब्रह्मअपरिगहेभ्यो विरतिर्त्रस। त०स० 7/1
3. अभिसन्धिकूताविरतिर्विषयायोग्याद्रव्रतं भवति। — र०श्रा० 86
4. व्रतमभितान्धिदृतो नियमः, इदं कर्तव्यमिदं न कर्तव्यमिति वा। — स०सि० 7-1
5. व्रतं को र्धः। सर्वन्वृत्तिपरिणमः। प०पृ० है 02/52/173/5
6. उपा०श्लो० 316
7. सा०ध० 2/80

8. निः श्ल्यो व्रती — सं०सू० 7/18
9. अगार्यनगारइय, वही, 7/19
10. अणुव्रतों मारी — वही, 7/20
11. तत्वार्थ सूत्र 7/21
12. र०श्र० 51
13. उपा० 314
14. चा०पा०गा० 24
15. सा परदारनवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि — रा०श्र 59
16. परमितपरिग्रह स्थादिच्छामरिमाणनामाणि — वही, 61
17. प०च० 14/184-85
18. ह०पु० 10 : 7-8
19. आ०पु० 10/63
20. सा०थ० 4/51
21. र०श्रा० 53
22. सं०सि० 7/12
23. सं०वा० 7
24. पु०सि० 43-89

प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली में सम्राट खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख का योगदान

अयोध्या राम*
डॉ० अरविन्द कुमार*

प्राचीनता की दृष्टि से सम्राट खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख स्थानीय राजवंश का प्राचीनतम् महत्त्वपूर्ण अभिलेख है तथा सम्राट अशोक के बाद का है। मौर्यतर युगीन अभिलेखों में खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख का विशेष महत्त्व है। यह अभिलेख अपने ढंग का अनूठा है। इसमें कलिंग (उड़ीसा) के राजा खारवेल के शासनकाल के प्रथम तेरह वर्षों की घटनाओं का वर्णन है। यह उड़ीसा के पुरी जिले के भुवनेश्वर मन्दिर से तीन मील पश्चिम की ओर स्थित उदगिरि-खण्डगिरि नाम की पहाड़ियों से बनी प्राचीन जैन गुफाओं में से एक है, जो हाथीगुम्फा अभिलेख के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सत्रह पंक्तियाँ हैं जो करीब चौरासी वर्गफुट क्षेत्रफल में लिखी गयी हैं। इसके अक्षर काफी बड़े हैं और गहरे खुदे गये हैं, परन्तु काल-कारण से यह लेख इतना क्षतिग्रस्त है कि इसका पाठोद्वारा समुचित रूप से कर सकना किसी के लिए सम्भव नहीं हो सका है। यह अभिलेख, प्राचीन शौरसेनी प्राकृत-भाषा और ब्राह्मी-लिपि में उत्कीर्ण है। इसके काल के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ लोग इसे ईसा पूर्व की दूसरी शती के मध्य रखते हैं और इसे कुछ काफी पीछे का मानते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग इसके काल की सीमा ई०पू० पहली शती अथवा पहली शती का आरम्भ अनुमान करते हैं। अतः खारवेल का समय, शिलालेख के आधार पर और अधिकांश विद्वानों की सम्पत्ति को ध्यान में रखते हुए पहली शती ई०पू० में ही ठहराया जा सकता है। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि खारवेल चेदिवंश के थे और कलिंग राजवंश की तीसरी पीढ़ी में हुए थे। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि खारवेल को जैन धर्म के प्रति आस्था थी।¹

हाथीगुम्फा अभिलेख के लेखक अज्ञात हैं, परन्तु जयसवाल के मतानुसार, वह कोई उच्च और वयोवृद्ध पदाधिकारी रहा होगा जिसने खारवेल को एक शिशु

*शोध छात्र, स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

*शोध निर्देशक सह अध्यक्ष प्राकृत विभाग, सर्वोदय कॉलेज गंजभड़सरा, रोहतास

